||Shri Hari||

Welcome to eBooks in HINDI

नित्य स्तुति और प्रार्थना

Table of Contents

१. पंचामृत.....

२. नित्य स्तुति .....4 - प्रार्थ

३. नित्य पठनीया गीताजीके पाँच श्लोक .....

४. प्रार्थना.....

५. प्रार्थना और शरणागति .....

444

॥ श्रीहरिः ॥

नित्यस्तुति और प्रार्थना

(नित्यस्तुति, भक्तके उद्गार)

त्वमेव माता च पिता त्वमेव
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव
त्वमेव सर्वं मम देवदेव॥

स्वामी रामसुखदास

सं० २०६४ छब्बीसवाँ पुनर्मुद्रण १०,०००

कुल मुद्रण ४,६५,०००

❖ मूल्य—२ रु०
(दो रुपये)

ISBN 81-293-0557-7

प्रकाशक एवं मुद्रक—

गीताप्रेस, गोरखपुर—२७३००५

(गोबिन्दभवन-कार्यालय, कोलकाता का संस्थान)

फोन : (०५५१) २३३४७२१; फैक्स : (०५५१)२३३६९९७

e-mail : booksales@gitapress.org website : www.gitapress.org

[444]

१. पंचामृत

॥ श्रीहरि: ॥

पञ्चामृत

- हम भगवान्‌के ही हैं।
- हम जहाँ भी रहते हैं, भगवान्‌के ही दरबारमें रहते हैं।
- हम जो भी शुभ काम करते हैं, भगवान्‌का ही काम करते हैं।
- शुद्ध-सात्त्विक जो भी पाते हैं, भगवान्‌का ही प्रसाद पाते हैं।
- भगवान्‌के दिये प्रसादसे भगवान्‌के ही जनोंकी सेवा करते हैं।

—परम श्रद्धेय स्वामीजी श्रीरामसुखदासजी महाराजके प्रवचनसे

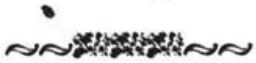

२. नित्य स्तुति

॥ श्रीहरिः॥

नित्यस्तुतिः

गजाननं भूतगणादिसेवितं
कपित्थजम्बूफलचारुभक्षणम्।
उमासुतं शोकविनाशकारकं
नमामि विघ्नेश्वरपादपङ्कजम्॥

कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः
पृच्छामि त्वां धर्मसम्मूढचेताः।
यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे
शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्॥

(गीता २। ७)

कविं पुराणमनुशासितार-
मणोरणीयांसमनुस्मरेद्यः ।
सर्वस्य धातारमचिन्त्यरूप-
मादित्यवर्णं तमसः परस्तात् ॥

(८। ९)

जो गजके मुखवाले हैं, भूतगण आदिके द्वारा सेवित हैं, कैथ और जामुनके फलोंका बड़े सुन्दर ढंगसे भक्षण करनेवाले हैं, शोकका विनाश करनेवाले हैं और भगवती उमाके पुत्र हैं, उन विघ्नेश्वर गणेशजीके चरणकमलोंमें मैं प्रणाम करता हूँ।

कायरताके दोषसे उपहत स्वभाववाला और धर्मके विषयमें मोहित अन्तःकरणवाला मैं आपसे पूछता हूँ कि जो निश्चित श्रेय हो वह मेरे लिये कहिये। मैं आपका शिष्य हूँ। आपके शरण हुए मेरेको शिक्षा दीजिये।

जो सर्वज्ञ, पुराण, शासन करनेवाला, सूक्ष्म-से-सूक्ष्म, सबका धारण-पोषण करनेवाला, अज्ञानसे अत्यन्त परे, सूर्यकी तरह प्रकाश-स्वरूप—ऐसे अचिन्त्य स्वरूपका चिन्तन करता है।

पश्यामि देवांस्तव देव देहे
सर्वांस्तथा भूतविशेषसङ्घान्।
ब्रह्माणमीशं कमलासनस्थ-
मृषींश्च सर्वानुरगांश्च दिव्यान्॥

अनेकबाहूदरवक्त्रनेत्रं
पश्यामि त्वां सर्वतोऽनन्तरूपम्।
नान्तं न मध्यं न पुनस्तवादिं
पश्यामि विश्वेश्वर विश्वरूप॥

किरीटिनं गदिनं चक्रिणं च
तेजोराशिं सर्वतो दीप्तिमन्तम्।
पश्यामि त्वां दुर्निरीक्ष्यं समन्ता-
द्दीप्तानलार्कद्युतिमप्रमेयम्॥

हे देव! मैं आपके शरीरमें सम्पूर्ण देवताओंको, प्राणियोंके विशेष-विशेष समुदायोंको, कमलासनपर बैठे हुए ब्रह्माजीको, शङ्करजीको, सम्पूर्ण ऋषियोंको और सम्पूर्ण दिव्य सर्पोंको देख रहा हूँ।

हे विश्वरूप! आपको मैं अनेक हाथों, पेटों, मुखों और नेत्रोंवाला तथा सब ओरसे अनन्त रूपोंवाला देख रहा हूँ। मैं आपके न आदिको, न मध्यको और न अन्तको ही देख रहा हूँ।

मैं आपको किरीट, गदा, चक्र (तथा शङ्ख और पद्म) धारण किये हुए देख रहा हूँ। आपको तेजकी राशि, सब ओर प्रकाश करनेवाले, देदीप्यमान अग्नि तथा सूर्यके समान कान्तिवाले, नेत्रोंके द्वारा कठिनतासे देखे जाने योग्य और सब तरफसे अप्रमेयस्वरूप देख रहा हूँ।

त्वमक्षरं परमं वेदितव्यं
त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम्।
त्वमव्ययः शाश्वतधर्मगोप्ता
सनातनस्त्वं पुरुषो मतो मे॥

अनादिमध्यान्तमनन्तवीर्य-
मनन्तबाहुं शशिसूर्यनेत्रम्।
पश्यामि त्वां दीप्तहुताशवक्त्रं
स्वतेजसा विश्वमिदं तपन्तम्॥

द्यावापृथिव्योरिदमन्तरं हि
व्याप्तं त्वयैकेन दिशश्च सर्वाः।
दृष्ट्वाद्भुतं रूपमुग्रं तवेदं
लोकत्रयं प्रव्यथितं महात्मन्॥

आप ही जाननेयोग्य परम अक्षर (अक्षरब्रह्म) हैं, आप ही इस सम्पूर्ण विश्वके परम आश्रय हैं, आप ही सनातन धर्मके रक्षक हैं और आप ही अविनाशी सनातन पुरुष हैं—ऐसा मैं मानता हूँ।

आपको मैं आदि, मध्य और अन्तसे रहित, अनन्त प्रभावशाली, अनन्त भुजाओंवाले, चन्द्र और सूर्यरूप नेत्रोंवाले, प्रज्वलित अग्निके समान मुखोंवाले और अपने तेजसे संसारको संतप्त करते हुए देख रहा हूँ।

हे महात्मन्! यह स्वर्ग और पृथ्वीके बीचका अन्तराल और सम्पूर्ण दिशाएँ एक आपसे ही परिपूर्ण हैं। आपके इस अद्भुत और उग्ररूपको देखकर तीनों लोक व्यथित (व्याकुल) हो रहे हैं।

अमी हि त्वां सुरसङ्घा विशन्ति
　　केचिद्भीताः प्राञ्जलयो गृणन्ति।
स्वस्तीत्युक्त्वा महर्षिसिद्धसङ्घाः
　　स्तुवन्ति त्वां स्तुतिभिः पुष्कलाभिः॥

रुद्रादित्या वसवो ये च साध्या
　　विश्वेऽश्विनौ　मरुतश्चोष्मपाश्च।
गन्धर्वयक्षासुरसिद्धसङ्घा
　　वीक्षन्ते त्वां विस्मिताश्चैव सर्वे॥
(११। १५—२२)

स्थाने हृषीकेश तव प्रकीर्त्या
　　जगत्प्रहृष्यत्यनुरज्यते　च।
रक्षांसि भीतानि दिशो द्रवन्ति
　　सर्वे नमस्यन्ति च सिद्धसङ्घाः॥

वे ही देवताओंके समुदाय आपमें प्रविष्ट हो रहे हैं। उनमेंसे कई तो भयभीत होकर हाथ जोड़े हुए आपके नामों और गुणोंका कीर्तन कर रहे हैं। महर्षियों और सिद्धोंके समुदाय 'कल्याण हो! मङ्गल हो!' ऐसा कहकर उत्तम-उत्तम स्तोत्रोंके द्वारा आपकी स्तुति कर रहे हैं।

जों ग्यारह रुद्र, बारह आदित्य, आठ वसु, बारह साध्यगण, दस विश्वेदेव और दो अश्विनीकुमार, उनचास मरुद्गण, सात पितृगण तथा गन्धर्व, यक्ष, असुर और सिद्धोंके समुदाय हैं, वे सभी चकित होकर आपको देख रहे हैं।

हे अन्तर्यामी भगवन्! आपके नाम, गुण, लीलाका कीर्तन करनेसे यह सम्पूर्ण जगत् हर्षित हो रहा है और अनुराग (प्रेम)-को प्राप्त हो रहा है, आपके नाम, गुण आदिके कीर्तनसे भयभीत होकर राक्षसलोग दसों दिशाओंमें भागते हुए जा रहे हैं और सम्पूर्ण सिद्धगण आपको नमस्कार कर रहे हैं। यह सब होना उचित ही है।

कस्माच्च ते न नमेरन्महात्मन्
गरीयसे ब्रह्मणोऽप्यादिकर्त्रे।
अनन्त देवेश जगन्निवास
त्वमक्षरं सदसत्तत्परं यत्॥

त्वमादिदेवः पुरुषः पुराण-
स्त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम्।
वेत्तासि वेद्यं च परं च धाम
त्वया ततं विश्वमनन्तरूप॥

वायुर्यमोऽग्निर्वरुणः शशाङ्कः
प्रजापतिस्त्वं प्रपितामहश्च।
नमो नमस्तेऽस्तु सहस्त्रकृत्वः
पुनश्च भूयोऽपि नमो नमस्ते॥

हे महात्मन्! गुरुओंके भी गुरु और ब्रह्माके भी आदिकर्ता आपके लिये वे सिद्धगण नमस्कार क्यों नहीं करें? क्योंकि हे अनन्त! हे देवेश! हे जगन्निवास! आप अक्षरस्वरूप हैं; आप सत् भी हैं, असत् भी हैं और सत्-असत्से परे भी जो कुछ है, वह भी आप ही हैं।

आप ही आदिदेव और पुराणपुरुष हैं तथा आप ही इस संसारके आश्रय हैं। आप ही सबको जाननेवाले, जाननेयोग्य और परमधाम हैं। हे अनन्तरूप! आपसे ही सम्पूर्ण संसार व्याप्त है।

आप ही वायु, यमराज, अग्नि, वरुण, चन्द्रमा, दक्ष आदि प्रजापति और प्रपितामह (ब्रह्माजीके भी पिता) हैं। आपको हजारों बार नमस्कार हो! नमस्कार हो!! और फिर भी आपको बार-बार नमस्कार हो! नमस्कार हो!!

नमः पुरस्तादथ पृष्ठतस्ते
नमोऽस्तु ते सर्वत एव सर्व।
अनन्तवीर्यामितविक्रमस्त्वं
सर्वं समाप्नोषि ततोऽसि सर्वः॥

सखेति मत्वा प्रसभं यदुक्तं
हे कृष्ण हे यादव हे सखेति।
अजानता महिमानं तवेदं
मया प्रमादात्प्रणयेन वापि॥
यच्चावहासार्थमसत्कृतोऽसि
विहारशय्यासनभोजनेषु ।
एकोऽथवाप्यच्युत तत्समक्षं
तत्क्षामये त्वामहमप्रमेयम्॥

हे सर्व! आपको आगेसे नमस्कार हो! पीछेसे नमस्कार हो! सब ओरसे ही नमस्कार हो! हे अनन्तवीर्य! अमित विक्रमवाले आपने सबको समावृत कर रखा है; अतः सब कुछ आप ही हैं।

आपकी महिमा और स्वरूपको न जानते हुए 'मेरे सखा हैं ऐसा मानकर मैंने प्रमादसे अथवा प्रेमसे हठपूर्वक (बिना सोचे-समझे) हे कृष्ण! हे यादव! हे सखे!' इस प्रकार जो कुछ कहा है;

और हे अच्युत! हँसी-दिल्लगीमें, चलते-फिरते, सोते-जागते, उठते-बैठते, खाते-पीते समयमें अकेले अथवा उन सखाओं, कुटुम्बियों आदिके सामने मेरे द्वारा आपका जो कुछ तिरस्कार किया गया है, वह सब अप्रमेयस्वरूप आपसे मैं क्षमा करवाता हूँ।

पितासि लोकस्य चराचरस्य
त्वमस्य पूज्यश्च गुरुर्गरीयान्।
न त्वत्समोऽस्त्यभ्यधिकः कुतोऽन्यो
लोकत्रयेऽप्यप्रतिमप्रभाव ॥

तस्मात्प्रणम्य प्रणिधाय कायं
प्रसादये त्वामहमीशमीड्यम्।
पितेव पुत्रस्य सखेव सख्युः
प्रियः प्रियायार्हसि देव सोढुम्॥

(११। ३६—४४)

त्वमेव माता च पिता त्वमेव
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव
त्वमेव सर्वं मम देवदेव॥

आप ही इस चराचर संसारके पिता हैं, आप ही पूजनीय हैं और आप ही गुरुओंके महान् गुरु हैं। हे अनन्त प्रभावशाली भगवन्! इस त्रिलोकीमें आपके समान भी दूसरा कोई नहीं है, फिर अधिक तो हो ही कैसे सकता है!

इसलिये शरीरसे आपके चरणोंमें पड़कर स्तुति करनेयोग्य आप ईश्वरको मैं प्रणाम करके प्रसन्न करना चाहता हूँ। जैसे पिता पुत्रके, मित्र मित्रके और पति पत्नीके अपमानको सह लेता है, ऐसे ही हे देव! आप मेरे द्वारा किया गया अपमान सहनेमें समर्थ हैं।

हे प्रभो! आप ही माता और आप ही पिता हैं, आप ही बन्धु और आप ही सखा हैं, आप ही विद्या और आप ही धन हैं; हे देवोंके देव! आप ही मेरे सर्वस्व हैं।

हरिः शरणम् हरिः शरणम् हरिः शरणम्
हरिः शरणम् हरिः शरणम् हरिः शरणम्
हरिः शरणम् हरिः शरणम् हरिः शरणम्
हरिः शरणम् हरिः शरणम् हरिः शरणम्
हरिः शरणम् हरिः शरणम् हरिः शरणम्
हरिः शरणम् हरिः शरणम् हरिः शरणम्
हरिः शरणम् हरिः शरणम् हरिः शरणम्
हरिः शरणम् हरिः शरणम् हरिः शरणम्
हरिः शरणम् हरिः शरणम् हरिः शरणम्
हरिः शरणम् हरिः शरणम् हरिः शरणम्
हरिः शरणम् हरिः शरणम् हरिः शरणम्
हरिः शरणम् हरिः शरणम् हरिः शरणम्

प्रार्थना

हे नाथ! आपसे मेरी प्रार्थना है कि आप मुझे प्यारे लगें। केवल यही मेरी माँग है, और कोई माँग नहीं।

हे नाथ! अगर मैं स्वर्ग चाहूँ तो मुझे नरकमें डाल दें, सुख चाहूँ तो अनन्त दु:खोंमें डाल दें, पर आप मुझे प्यारे लगें।

हे नाथ! आपके बिना मैं रह न सकूँ, ऐसी व्याकुलता आप दे दें।

हे नाथ! आप मेरे हृदयमें ऐसी आग लगा दें कि आपकी प्रीतिके बिना मैं जी न सकूँ।

हे नाथ! आपके बिना मेरा कौन है? मैं किससे कहूँ और कौन सुने?

हे मेरे शरण्य! मैं कहाँ जाऊँ? क्या करूँ? कोई मेरा नहीं।

मैं भूला हुआ कइयोंको अपना मानता रहा। उनसे धोखा खाया, फिर भी धोखा खा सकता हूँ, आप बचायें!

हे मेरे प्यारे! हे अनाथनाथ! हे अशरणशरण! हे पतितपावन! हे दीनबन्धो! हे अरक्षितरक्षक! हे आर्तत्राणपरायण! है निराधारके आधार! हे अकारणकरुणावरुणालय! हे साधनहीनके एकमात्र साधन! हे असहायके सहायक! क्या आप मेरेको जानते नहीं, मैं कैसा भग्नप्रतिज्ञ, कैसा कृतघ्न, कैसा अपराधी, कैसा विपरीतगामी, कैसा अकरणकरणपरायण हूँ। अनन्त दु:खोंके कारणस्वरूप भोगोंको भोगकर-जानकर भी आसक्त रहनेवाला, अहितको हितकर माननेवाला, बार-बार ठोकरें खाकर भी नहीं चेतनेवाला, आपसे विमुख होकर बार-बार दु:ख पानेवाला, चेतकर भी न चेतनेवाला, जानकर भी न

जाननेवाला मेरे सिवाय आपको ऐसा कौन मिलेगा?

प्रभो! त्राहि माम्! त्राहि माम्!! पाहि माम्! पाहि माम्!! हे प्रभो! हे विभो! मैं आँख पसारकर देखता हूँ तो मन-बुद्धि-प्राण-इन्द्रियाँ और शरीर भी मेरे नहीं हैं, फिर वस्तु-व्यक्ति आदि मेरे कैसे हो सकते हैं! ऐसा मैं जानता हूँ, कहता हूँ, पर वास्तविकतासे नहीं मानता। मेरी यह दशा क्या आपसे किञ्चिन्मात्र भी कभी छिपी है? फिर हे प्यारे! क्या कहूँ! हे नाथ! हे नाथ!! हे मेरे नाथ!!! हे दीनबन्धो! हे प्रभो! आप अपनी तरफसे शरणमें ले लें। बस, केवल आप प्यारे लगें।

नित्य पठनीय गीताजीके पाँच श्लोक

अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन्।
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय संभवाम्यात्ममायया॥

मैं अजन्मा और अविनाशी-स्वरूप होते हुए भी तथा सम्पूर्ण प्राणियोंका ईश्वर होते हुए भी अपनी प्रकृतिको अधीन करके अपनी योगमायासे प्रकट होता हूँ।

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥

हे भरतवंशी अर्जुन! जब-जब धर्मकी हानि और अधर्मकी वृद्धि होती है, तब-तब ही मैं अपने-आपको साकाररूपसे प्रकट करता हूँ।

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे॥

साधुओं (भक्तों)-की रक्षा करनेके लिये, पापकर्म

करनेवालोंका विनाश करनेके लिये और धर्मकी भलीभाँति स्थापना करनेके लिये मैं युग-युगमें प्रकट हुआ करता हूँ।

जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वतः।
त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन॥

हे अर्जुन! मेरे जन्म और कर्म दिव्य हैं। इस प्रकार (मेरे जन्म और कर्मको) जो मनुष्य तत्त्वसे जान लेता अर्थात् दृढ़तापूर्वक मान लेता है, वह शरीरका त्याग करके पुनर्जन्मको प्राप्त नहीं होता, प्रत्युत मुझे प्राप्त होता है।

वीतरागभयक्रोधा मन्मया मामुपाश्रिताः।
बहवो ज्ञानतपसा पूता मद्भावमागताः॥

(गीता ४। ६—१०)

राग, भय और क्रोधसे सर्वथा रहित, मेरेमें ही तल्लीन, मेरे ही आश्रित तथा ज्ञानरूप तपसे पवित्र हुए बहुत-से भक्त मेरे भाव (स्वरूप)-को प्राप्त हो चुके हैं।

प्रार्थना

(१)

हे नाथ! अब तो आपको हमारेपर कृपा करनी ही पड़ेगी। हम भले-बुरे कैसे ही हों, आपके ही बालक हैं। आपको छोड़कर हम कहाँ जायँ ? किससे बोलें? हमारी कौन सुने ? संसार तो सफा जंगल है। उससे कहना अरण्यरोदन (जंगलमें रोना) है। आपके सिवाय कोई सुननेवाला नहीं है। महाराज! हम किससे कहें? हमारेपर किसको दया आती है? अच्छे-अच्छे लक्षण हों तो दूसरा भी कोई सुन ले। हमारे-जैसे दोषी, अवगुणीकी बात कौन सुने ? कौन अपने पास रखे? हे गोविन्द-गोपाल! यह तो आप ही हैं, जो गायों और बैलोंको भी

अपने पास रखते हैं, चारा देते हैं। हम तो बस, बैलकी तरह ही हैं! बिलकुल जंगली आदमी हैं! आप ही हमें निभाओगे। और कौन है, किसकी हिम्मत है कि हमें अपना ले? ऐसी शक्ति भी किसमें है? हम किसीको क्या निहाल करेंगे? हमें अपनाकर भी कोई क्या करेगा? हमें रोटी दे, कपड़ा दे, मकान दे, खर्चा करे और हमारेसे क्या मतलब सिद्ध होगा? ऐसे निकम्मे आदमीको कौन सँभाले? कोई गुण-लक्षण हों तो सँभाले। यह तो आप दया करते हैं, तभी काम चलता है, नहीं तो कौन परवाह करता है?

हे प्रभो! थोड़ी-सी योग्यता आते ही हमें अभिमान हो जाता है! योग्यता तो थोड़ी होती है, पर मान लेते हैं कि हम तो बहुत बड़े हो गये, बड़े योग्य बन गये, बड़े भक्त बन गये, बड़े वक्ता बन गये, बड़े चतुर बन गये, बड़े

होशियार बन गये, बड़े विद्वान् बन गये, बड़े त्यागी, विरक्त बन गये! भीतरमें यह अभिमान भरा है नाथ! आपकी ऐसी बात सुनी है कि आप अभिमानसे द्वेष करते हो और दैन्यसे प्रेम करते हो*। अगर आपको अभिमान सुहाता नहीं है तो फिर उसको मिटा दो, दूर कर दो। बालक कीचड़से सना हुआ हो और गोदीमें जाना चाहता हो तो माँ ही उसको धोयेगी, और कौन धोयेगा ? क्या बालक खुद स्नान करके आयेगा, तब माँ उसको गोदीमें लेगी? आपको हमारी अशुद्धि नहीं सुहाती तो फिर कौन साफ करेगा? आपको ही साफ करना पड़ेगा महाराज!

हे नाथ! हमारे सब कुछ आप ही हो। आपके सिवाय और कौन है, जो हमारे-जैसेको

---

* ईश्वरस्याप्यभिमानद्वेषित्वाद् दैन्यप्रियत्वाच्च।
(नारदभक्तिसूत्र २७)

गले लगाये ? इसलिये हे प्रभो! अपना जानकर हमारेपर कृपा करो। एक मारवाड़ी कहावत है—'***गैलो गूँगो बावळो, तो भी चाकर रावळो।***' हम कैसे ही हैं, आपके ही हैं। आप अपनी दयासे ही हमें सँभालो, हमारे लक्षणोंसे नहीं। जिन भरतजीकी रामजीसे भी ज्यादा महिमा कही गयी है, वे भी कहते हैं—

जौं करनी समुझै प्रभु मोरी। नहिं निस्तार कलप सत कोरी॥
जन अवगुन प्रभु मान न काऊ। दीन बंधु अति मृदुल सुभाऊ॥

(मानस, उत्तर० १। ३)

आपके ऐसे मृदुल स्वभावको सुनकर ही आपके सामने आनेकी हिम्मत होती है। अगर अपनी तरफ देखें तो आपके सामने आनेकी हिम्मत ही नहीं होती। आपने वृत्रासुर, प्रह्लाद, विभीषण, सुग्रीव, हनुमान्, गजेन्द्र, जटायु, तुलाधार वैश्य, धर्मव्याध, कुब्जा, व्रजकी गोपियाँ आदिका भी उद्धार कर दिया, यह

देखकर हमारी हिम्मत होती है कि आप हमारा भी उद्धार करेंगे*। जैसे अत्यन्त लोभी आदमी कूड़े-कचरेमें पड़े पैसेको भी उठा लेता है, ऐसे ही आप भी कूड़े-कचरेमें पड़े हम-जैसोंको उठा लेते हो। थोड़ी बातसे ही आप रीझ जाते हो—***'तुम्ह रीझहु सनेह सुठि थोरें'*** (मानस, बाल० ३४२। २)। कारण कि आपका स्वभाव है—

रहति न प्रभु चित चूक किए की। करत सुरति सय बार हिए की॥

(मानस, बाल० २९। ३)

अगर आपका ऐसा स्वभाव न हो तो हम आपके नजदीक भी न आ सकें; नजदीक

---

* सठ सेवक की प्रीति रुचि रखिहहिं राम कृपालु।
उपल किए जलजान जेहिं सचिव सुमति कपि भालु॥
प्रभु तरु तर कपि डार पर ते किए आपु समान।
तुलसी कहूँ न राम से साहिब सीलनिधान॥
(मानस, बाल० २८-२९)

आनेकी हिम्मत भी न हो सके! आप हमारे अवगुणोंकी तरफ देखते ही नहीं। थोड़ा भी गुण हो तो आप उस तरफ देखते हो। वह थोड़ा भी आपकी दृष्टिसे है। हे नाथ! हम विचार करें तो हमारेमें राग-द्वेष, काम-क्रोध, लोभ-मोह, अभिमान आदि कितने ही दोष भरे पड़े हैं! हमारेसे आप ज्यादा जानते हो, पर जानते हुए भी आप उनको मानते नहीं—***'जन अवगुन प्रभु मान न काऊ'***, इसीसे हमारा काम चलता है प्रभो! कहीं आप देखने लग जाओ कि यह कैसा है, तो महाराज! पोल-ही-पोल निकलेगी!

हे नाथ! बिना आपके कौन सुननेवाला है? कोई जाननेवाला भी नहीं है! हनुमान्‌जी विभीषणसे कहते हैं कि मैं तो चंचल वानरकुलमें पैदा हुआ हूँ। प्रातःकाल जो हमलोगोंका नाम भी ले

ले तो उस दिन उसको भोजन न मिले! ऐसा अधम होनेपर भी भगवान्‌ने मेरेपर कृपा की*, फिर तुम तो पवित्र ब्राह्मणकुलमें पैदा हुए हो! कानोंसे ऐसी महिमा सुनकर ही विभीषण आपकी शरणमें आये और बोले—

श्रवन सुजसु सुनि आयउँ प्रभु भंजन भव भीर।
त्राहि त्राहि आरति हरन सरन सुखद रघुबीर॥

(मानस, सुन्दर० ४५)

जो आपकी शरणमें आ जाता है, उसकी आप रक्षा करते हो, उसको सुख देते हो, यह आपका स्वभाव है—

---

* कहहु कवन मैं परम कुलीना। कपि चंचल सबहीं बिधि हीना॥
प्रात लेइ जो नाम हमारा। तेहि दिन ताहि न मिलै अहारा॥
अस मैं अधम सखा सुनु मोहू पर रघुबीर।
कीन्ही कृपा सुमिरि गुन भरे बिलोचन नीर॥
(मानस, सुन्दर० ७)

ऐसो को उदार जग माहीं।
बिनु सेवा जो द्रवै दीन पर राम सरिस कोउ नाहीं॥

(विनयपत्रिका १६२)

यहि दरबार दीन को आदर, रीति सदा चलि आई।

(विनयपत्रिका १६५। ५)

हरेक दरबारमें दीनका आदर नहीं होता। जबतक हमारे पास कुछ धन-सम्पत्ति है, कुछ गुण है, कुछ योग्यता है, तभीतक दुनिया हमारा आदर करती है। दुनिया तो हमारे गुणोंका आदर करती है, हमारा खुदका (स्वरूपका) नहीं। परन्तु आप हमारा खुदका आदर करते हो, हमें अपना अंश मानते हो—'**ममैवांशो जीवलोके**' (गीता १५। ७), '***सब मम प्रिय सब मम उपजाए***' (मानस, उत्तर० ८६। २)। हमें अपना अंश मानते ही नहीं, स्पष्टतया जानते हो और अपना जानकर कृपा करते हो। हमारे अवगुणोंकी तरफ आप देखते ही नहीं। बच्चा

कैसा ही हो, कुछ भी करे, पर 'अपना है'—यह जानकर माँ कृपा करती है, नहीं तो मुफ्तमें कौन आफत मोल ले महाराज?

हे नाथ! जो कुछ भी हमें मिलता है, आपकी कृपासे ही मिलता है। परन्तु उसको हम अपना मान लेते हैं कि यह तो हमारा ही है। यह आपकी खास उदारता और हमारी खास भूल है। महाराज! आपकी देनेकी रीति बड़ी विलक्षण है! सब कुछ देकर भी आपको याद नहीं रहता कि मैंने कितना दिया है? आपके अन्तःकरणमें हमारे अवगुणोंकी छाप ही नहीं पड़ती। आपका अन्तःकरणरूपी कैमरा कैसा है, इसको आप ही जानते हो! उसमें अवगुण तो छपते ही नहीं, गुण-ही-गुण छपते हैं। ऐसा आपका स्वभाव है! सिवाय आपमें अपनेपनके और हमारे पास क्या है महाराज!

आप हमें अपना जानते हैं, मानते हैं, स्वीकार करते हैं, तभी काम चलता है नाथ! नहीं तो बड़ी मुश्किल हो जाती! हम जी भी नहीं सकते थे! केवल आपकी कृपाका ही आसरा है, तभी जीते हैं—

आप कृपा को आसरो, आप कृपा को जोर।
आप बिना दीखे नहीं, तीन लोक में और॥

कृपा करके भी आपकी कृपा कभी तृप्त नहीं होती—***'जासु कृपा नहिं कृपाँ अघाती'*** (मानस, बाल० २८। २)। ऐसी कृपाके कारण ही आप कृपा कर रहे हो! आप हमारे भीतरकी सब बातें पूर्णतया जानते हो, पर जानते हुए भी उधर दृष्टि नहीं डालते और ऐसा बर्ताव करते हो कि मानो आपको पता ही नहीं, आप जानते ही नहीं! आपकी कृपा ही आपको मोहित कर देती है। आप अपने ही गुणोंसे मोहित हो जाते हो।

आप अपना किया हुआ उपकार ही भूल जाते हो। अपनी दी हुई वस्तुको भी भूल जाते हो। देते तो आप हो, पर हम मान लेते हैं कि यह तो हमारी ही है! ऐसे कृतघ्न, गुणचोर हैं हम तो महाराज! पूत कपूत हो चाहे सपूत हो, पूत तो है ही। पूत कभी अपूत नहीं हो सकता। आपने गीतामें कहा है कि जीव सदासे मेरा ही अंश है—**'ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः।'** अतः अपना पूत जानकर कृपा करो।

हे प्रभो! हम आपके क्या काम आ सकते हैं? क्या आपका कोई काम अड़ा हुआ है, जो हमारेसे निकलता हो? क्या हमारी योग्यता आपके कोई काम आ सकती है? यह तो केवल हमारा अभिमान बढ़ानेमें काम आती है। आपकी दी हुई चीजको हम अपनी मान लेते हैं और अपनी मान करके अभिमान कर लेते हैं—ऐसे कृतघ्न हैं हम! फिर भी आप

आँखें मीच लेते हो। आप उधर खयाल ही नहीं करते। आपके ऐसे स्वभावसे ही तो हम जी रहे हैं!

हे नाथ! हम आपसे क्या कहें? हमारे पास कहनेलायक कोई शब्द नहीं है, कोई योग्यता नहीं है। आप जंगलमें रहनेवाले किरातोंके वचन भी ऐसे सुनते हो, जैसे पिता अपने बालककी तोतली वाणी सुनता है—

बेद बचन मुनि मन अगम ते प्रभु करुना ऐन।
बचन किरातन्ह के सुनत जिमि पितु बालक बैन॥

(मानस, अयोध्या० १३६)

इसी तरह हे नाथ! हमें कुछ कहना आता नहीं। हम तो बस, इतना ही जानते हैं कि जिसका कोई नहीं होता, उसके आप होते हो—

बोल न जाणूं कोय अल्प बुद्धि मन वेग तें।
नहिं जाके हरि होय या तो मैं जाणूं सदा॥

(करुणासागर ७४)

(२)

हे नाथ! हमें आपके चरित्र अच्छे लगें, आपकी लीला अच्छी लगे, आपका रूप अच्छा लगे, आपका धाम अच्छा लगे, आपके गुण अच्छे लगें, आपकी महिमा अच्छी लगे, तो यह आपकी कृपा ही है, हमारा कोई बल नहीं है। आज जो हम आपका नाम ले रहे हैं, आपकी चर्चा सुन रहे हैं, आपमें लगे हुए हैं, यह केवल आपकी ही कृपा है। यह न तो हमारा उद्योग है और न हमारे कर्मोंका फल ही है। किसीकी ऐसी योग्यता, सामर्थ्य नहीं है कि आपकी कृपाके बिना आपकी तरफ आ सके। काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर-जैसे कितने-कितने अवगुण भरे हुए हैं और कैसा वायुमण्डल है! कैसा कलियुगका समय है! ऐसे समयमें आपकी तरफ वृत्ति होती है तो यह

केवल आपकी कृपा है। आपकी कृपाके बिना जीव अपने बलसे आपकी तरफ आ सकता ही नहीं! सन्तोंका संग भी आप ही देते हो। प्रेरणा भी आपकी होती है। आप ही ऐसा वायुमण्डल बना देते हो, जिससे आपकी तरफ आनेके लिये हम बाध्य, विवश हो जाते हैं! मानमें, बड़ाईमें, आदरमें, प्रशंसामें, रुपयोंमें, भोगोंमें, संग्रहमें, सुखमें, आराममें हमारा मन स्वतः जाता है— यह तो है हमारी दशा! और इसपर भी जो सत्संग मिलता है, आपकी चर्चा मिलती है, आपकी कथा मिलती है तो यह आपकी ही कृपा है महाराज! संसारका चिन्तन तो अपने-आप होता है; क्योंकि ऐसा स्वभाव पड़ा हुआ है, पर आपकी चर्चा, आपका चिन्तन आपकी कृपासे ही होता है। आपने ही सद्बुद्धि दी है। हमारी दशा तो बेदशा है, पर आप हमारी

www.swamiramsukhdasji.net

दशाकी तरफ देखते ही नहीं हो, हमारे अवगुणोंकी तरफ देखते ही नहीं हो। आपका ऐसा स्वभाव ही है*। आपकी अपनी कृपासे ही आप मोहित हो जाते हो! अपनी ही कृपाके वशीभूत होकर आप हम-जैसोंको भी अपनी तरफ खींचते हो! उस कृपासे ही हम आपकी ओर आते हैं, अपनी शक्तिसे, भक्तिसे नहीं!

हे नाथ! भक्ति भी आप देते हो, तब होती है। अपनी जबर्दस्तीसे भक्ति लेनेकी ताकत किसीमें नहीं है। इतना ही नहीं, संसारके पदार्थ लेनेकी और भोगनेकी इच्छा होनेपर भी हम ले नहीं सकते, भोग नहीं सकते। जब नाशवान् संसारमें भी हमारा वश नहीं चलता, तो फिर आपकी अविनाशी

---

* उमा राम सुभाउ जेहिं जाना। ताहि भजनु तजि भाव न आना॥
(मानस, सुन्दर० ३४। २)

भक्ति, अविनाशी गुण हमारे बलसे कैसे मिल सकते हैं? हम जिस धन, मान, बड़ाई, आराम आदिके लिये उद्योग करते हैं और झूठ, कपट, बेईमानी आदिको दोष जानते हुए भी स्वीकार करते हैं, उस धन आदिको भी प्राप्त नहीं कर सकते! फिर हम आपकी तरफ चलें—यह क्या हमारी शक्ति है? हम विनाशीको भी नहीं पकड़ सकते, फिर अविनाशीको कैसे पकड़ सकते हैं? उसको पकड़ सकते ही नहीं। हमारी क्या ताकत है प्रभो! यह तो आपने ही कृपा की है, जिससे हम आपकी चर्चा सुनते हैं, आपके चरित्र सुनते हैं, आपके गुणोंका वर्णन सुनते हैं, आपका नाम सुनते हैं, आपके विग्रहका दर्शन करते हैं। आप ही कृपा करके ऐसा संयोग बैठाते हो। आप ही ऐसी परिस्थिति पैदा कर देते

हो, जिससे हम और कहीं जा नहीं सकते! यह सब आप ही करते हो और आपको करना ही पड़ेगा; क्योंकि हम आपके हैं। अच्छे हैं तो आपके हैं, बुरे हैं तो आपके हैं—***'जो हम भले बुरे तौ तेरे!'*** हम आपके पाले पड़ गये! आप भी क्या कर सकते हो ? आपमें खींचनेकी ताकत तो है, पर दूर करनेकी ताकत है ही नहीं! आपका स्वभाव ही ऐसा है!

हे नाथ! आप कितनी-कितनी विलक्षण कृपा करते हो कि हम पहचान ही नहीं सकते। आपका दिया हुआ ही आपको मोहित कर रहा है! आपके दिये हुए गुणोंसे ही आप मोहित हो जाते हो! हमारे अवगुणोंकी तरफ, हमारी स्थितिकी तरफ, हमारे विकारोंकी तरफ, हमारे विचारोंकी तरफ आपकी दृष्टि जाती ही नहीं। यह आपका स्वभाव है, हमारा गुण नहीं,

इस स्वभावके परवश होकर ही आप हमारेको अपनी तरफ खींचते हो। हम आपकी इस कृपाको किंचित् भी कह नहीं सकते, जान नहीं सकते, पहचान नहीं सकते! हमारी क्या ताकत है? हमारा तो कहना ही क्या है, जो मुक्त हो गये हैं, उन तत्त्वज्ञ महापुरुषोंको भी आप अपनी तरफ खींचते रहते हो*, उनको भी निजानन्दमें टिकने नहीं देते हो! उनको अपना परमप्रेम प्रदान करनेके लिये आप लालायित हो जाते हो और इसके लिये उनके जीवन्मुक्तिके आनन्दको भी फीका, किरकिरा कर देते हो। जब जीवन्मुक्त महापुरुषोंकी भी ऐसी बात है, फिर हम अपनी कहाँतक कहें? हमारी बुद्धि, विचारशक्ति वहाँतक पहुँचती ही नहीं!

---

* आत्मारामाश्च मुनयो निर्ग्रन्था अप्युरुक्रमे।
कुर्वन्त्यहैतुकीं भक्तिमित्थम्भूतगुणो हरिः॥
'ज्ञानके द्वारा जिनकी चिज्जडग्रन्थि कट गयी है, ऐसे आत्माराम

हे प्रभो! हम सांसारिक मायामोहमें फँसे हुए हैं। उसमें ही बने रहना चाहते हैं। उसमें ही सुख मानते हैं, आराम मानते हैं। हम उसमें ही अपना हित मानते हैं, जो कि हमारे अहितका खास कारण है। बुराईको हम भलाईसे भी विशेष आदर देते हैं। हम जानकर उद्योगपूर्वक छिप-छिपकर पाप करते हैं। पाप, अन्यायजनित सुख मिलनेमें अपना सौभाग्य, लाभ, बुद्धिमत्ता, चतुराई मानते हैं। पापजन्य रुपये-पैसे, सुख-आराम मिलनेपर खुशी मनाते हैं कि हम निहाल हो गये! मौज हो गयी! इनके दोषोंकी तरफ हमारी दोषदृष्टि जाती ही नहीं, जिससे हम फँस जाते हैं, चौरासी लाख योनियोंमें जाते हैं, नरकोंमें

मुनिगण भी भगवान्‌की निष्काम भक्ति किया करते हैं; क्योंकि भगवान्‌के गुण ही ऐसे हैं कि वे जीवोंको अपनी तरफ खींच लेते हैं।' (श्रीमद्भा० १। ७। १०)

जाते हैं, दु:ख भोगते हैं, कराहते हैं, चिल्लाते हैं, पुकारते हैं। फिर भी उधर ही जानेका मन करता है! क्या करें नाथ! आप ही हमें अपनी तरफ खींच लें।

हे नाथ! आपकी कृपाकी तरफ हमारी दृष्टि जाती है तो वह भी आपकी कृपासे ही जाती है। पर हम इसको भी नहीं पहचानते! आसक्ति, कामना, मोह, मूढ़ता, घमण्ड, ईर्ष्या आदि बड़े-बड़े दोषोंके जालमें हम फँसे हुए हैं, जो कि पतन करनेवाली, दु:ख देनेवाली आसुरी-सम्पत्ति है। हमारी तो यह दशा है! परन्तु आप हमारे स्वभाव, कृति आदिको न देखकर हमें अपनी तरफ खींचते हो, यह आपकी कृपा है, आपका स्वभाव है। हम तो इसको भी नहीं पहचानते। हाँ, कभी-कभी मनमें लहर आ जाती है, आपकी कृपाकी तरफ हमारी दृष्टि

चली जाती है तो यह भी आपकी कृपासे होता है। आप कृपादृष्टिसे थोड़ा-सा देखते हो, उसीसे यह बात पैदा होती है। नहीं तो हमारेमें वैसी कोई योग्यता नहीं, कोई सामर्थ्य नहीं, इस तरफ हमारी कोई रुचि नहीं। हमारी रुचि तो संसारके भोगोंकी है। शरीर, इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि—सब प्रकृतिके हैं, पर इनके वशमें होकर हम विषयोंका सेवन करते हैं, इनकी हाँ-में-हाँ मिलाते हैं। हमारी दशा तो यह है! आप ही कृपा करते हो तो हमारी दृष्टि आपकी कृपाकी तरफ जाती है। ऐसे युगमें, ऐसे वायुमण्डलमें, ऐसे समुदायमें, ऐसी प्रवृत्तिमें हम रहते हैं, फिर भी आपकी तरफ खिंचाव होता है तो यह केवल आपकी कृपासे ही होता है। आपकी तरफ हमारी जो रुचि होती है, वह भी

आपकी दी हुई है प्रभो! हमारे पास क्या है? केवल आपकी कृपा है। उस कृपाके ही भरोसे हम आपकी तरफ चलते हैं। हमारेमें कोई योग्यता नहीं, कोई सामर्थ्य नहीं, कोई विवेक-विचार नहीं! आपके ही दिये हुए विवेकको हम अपना मान लेते हैं और अभिमान कर लेते हैं कि हम ऐसे समझदार हैं! हमारी बेसमझीकी, मूर्खताकी हद हो गयी महाराज! परन्तु आपका इस तरफ खयाल ही नहीं है—***'जन अवगुन प्रभु मान न काऊ!'***

दूसरे आदमी तो बेचारे भ्रममें रह जायँ; क्योंकि वे हमारेको जानते नहीं हैं। परन्तु आप तो हमारे रग-रगकी बात जानते हो। आप हमारे मनकी स्फुरणाको भी जानते हो, पहले किये हुए हमारे कर्मोंको भी जानते

हो, हमारी वर्तमान-दशाको भी जानते हो, हमारे बुरे स्वभावको, पुरानी आदतको भी जानते हो; परन्तु आप उस तरफ देखते ही नहीं! उलटे आप हमें अपनी तरफ खींचते हो; क्योंकि यह आपका स्वभाव है। इस स्वभावसे ही आप जीवको अपनी विशेष कृपासे चौरासी लाख योनियाँ, नरक, दुःख, हानि, रोग, शोक, भय, उद्वेग, सन्ताप आदि देते हो, जिससे इसको चेत हो जाय। जैसे सोते हुए आदमीको उठाना हो तो सुई चुभानेसे उसको चेत हो जाता है, ऐसे ही हमें चेतानेके लिये, अपनी ओर खींचनेके लिये आप प्रतिकूल परिस्थिति भेजते हो। आप किसी भी अवस्था, परिस्थितिमें हमें टिकने नहीं देते—यह आपका निरन्तर आह्वान

www.swamiramsukhdasji.net

है, अपनी तरफ बुलाना है। आपने अपनी कृपासे संसारकी रचना ही ऐसी की है कि कोई भी अवस्था, परिस्थिति आदि निरन्तर हमारे साथ नहीं रहती। संसारका निरन्तर हमारेसे वियोग होता रहता है।

हे प्रभो! आप हमें चेत करानेमें कमी नहीं करते, हमें बार-बार चेताते हो, फिर भी हम चेत नहीं करते, उलटे अपने बल और बुद्धिमानीसे पुनः उन्हीं दोषोंकी तरफ जाते हैं! उन दोषोंके फलस्वरूप मिली प्रतिकूल परिस्थितिसे बचनेके लिये हम पुनः वही दोष करते हैं—यह तो हमारी दशा है! फिर भी हमें चेत करानेमें आप उकताते नहीं—यह आपकी कृपा है! हमारी तो कभी कोई इच्छा हो जाती है, कभी कोई चाहना हो जाती है, कभी कोई मार्ग पकड़ लेते हैं, कभी

किसीका संग कर लेते हैं, कभी किसीकी बात ठीक मान लेते हैं—ऐसे हम भ्रममें पड़ जाते हैं, फिर भी आप हमें निकाल लेते हो। आपकी कृपा बड़ी विलक्षण है!

हे नाथ! आपके भीतर जीवोंका कल्याण करनेकी जो चाह है, उसको हम समझ ही नहीं पाते। माँकी कृपाको बालक क्या समझे? बालक तो बेसमझ होता है। माँ तो उसको नहलाकर साफ करती है, पर वह रोता है। यही दशा हमारी है महाराज! इसलिये हे नाथ! कृपा करो। कृपा कर ही रहे हो। क्या हमारे कहनेसे कृपा करोगे ? आपका तो स्वभाव ही कृपा करनेका है। फिर भी हम आपसे बार-बार कहते हैं कि कृपा करो, तो इस बातको भी आप सह लेते हो! यह आपकी कितनी सहिष्णुता है, धैर्य है! आप अपनी

तरफसे स्वतः-स्वाभाविक कृपा करते हो और उसीसे जीवोंका उद्धार होता है। जीवोंको कुछ चेत होता है, होश आता है तो आपकी कृपासे ही आता है। वे निषिद्ध आचरण करते हैं तो आप ही उनको नरकोंमें भेजकर शुद्ध करते हो। आपने गीतामें कहा है—

आसुरीं योनिमापन्ना मूढा जन्मनि जन्मनि।
मामप्राप्यैव कौन्तेय ततो यान्त्यधमां गतिम्॥

(१६। २०)

'हे कुन्तीनन्दन! वे मूढ़ मनुष्य मेरेको प्राप्त न करके ही जन्म-जन्मान्तरमें आसुरी योनिको प्राप्त होते हैं, फिर उससे भी अधिक अधम गतिमें अर्थात् भयंकर नरकोंमें चले जाते हैं।'

आपने कितनी विलक्षण बात कही है कि मूढ़ मनुष्य मेरेको प्राप्त न करके आसुरी योनियोंमें चले जाते हैं। इसका अर्थ यह हुआ

कि आप सब मनुष्योंको अपनी प्राप्ति कराना चाहते हो! इसीलिये आप उनको ऐसा विवेक, अवसर, संग देते हो, जिससे वे आपकी प्राप्ति कर सकें। परन्तु हम आपके दिये हुए विवेकका दुरुपयोग करके पतनकी तरफ जा रहे हैं और उसमें अपनी बुद्धिमानी मान रहे हैं! हे नाथ! पतितोंका उद्धार करना आपका सहज स्वभाव है। आपके इस स्वभावको देखकर हमारे मनमें विशेष उत्साह होता है कि हम पतित हैं और आप पतितपावन हैं, फिर हमारा उद्धार होनेमें क्या सन्देह है?

मैं हरि पतित-पावन सुने।
मैं पतित तुम पतित-पावन दोउ बानक बने॥

(विनयपत्रिका १६०)

www.swamiramsukhdasji.net

प्रार्थना और शरणागति

भगवान्‌से प्रार्थना करना और उनके शरण होना—ये दो बातें तत्काल सिद्धि देनेवाली हैं। कोई आफत आ जाय, दु:ख आ जाय, सन्ताप हो जाय, उलझन हो जाय तो आर्तभावसे 'हे नाथ! हे प्रभो!' कहकर भगवान्‌को पुकारे, उनसे प्रार्थना करे तो तत्काल लाभ होता है। जैसे गजेन्द्र, द्रौपदी, उत्तरा आदिने विपत्तिके समय भगवान्‌को याद किया, उनको पुकारा तो उनकी तत्काल रक्षा हो गयी। कारण यह है कि जब अपना बल कोई काम नहीं देता, अपनी बुद्धि कुण्ठित हो जाती है, उस समय भगवान्‌की शरण लेनेसे भगवान्‌की कृपा काम करती है। जब गजेन्द्र ग्राहसे अपनेको न छुड़ा सकनेके कारण अपने बलसे और अपने साथियोंसे निराश हो गया, तब वह भगवान्‌की शरणमें गया और

भगवान्‌ने उसको ग्राहसे मुक्ति दिलायी। चीर-हरणके समय जब द्रौपदी सब तरफसे निराश हो गयी, किसीने भी उसकी प्रार्थना नहीं सुनी, तब उसने भगवान्‌को पुकारा और भगवान्‌ने उसकी रक्षा की। जब अश्वत्थामाके द्वारा छोड़ा गया अस्त्र उत्तराके गर्भको नष्ट करनेके लिये आने लगा, तब उत्तराने सर्वथा भगवान्‌के शरण होकर उनको पुकारा और भगवान्‌ने उसके गर्भकी रक्षा की। जब अर्जुन कर्तव्य-अकर्तव्यका निर्णय न कर सकनेके कारण अपनी बुद्धिसे निराश हो गये, तब वे भगवान्‌की शरणमें गये और भगवान्‌ने संसारका उद्धार करनेवाले गीतोपदेशके द्वारा उनके मोहका नाश कर दिया।

भगवान्‌की कृपासे जो काम होता है, वह अपने बल-बुद्धिसे कभी नहीं होता। परन्तु जबतक अपना बल पूरा न लगा दें, तबतक भीतरसे

असली प्रार्थना नहीं होती। कारण कि अपना बल पूरा लगानेसे जब अपनेमें निर्बलताका अनुभव होने लगता है, तब अपने बलका भरोसा छूट जाता है और अपने बलका भरोसा छूटनेसे ही असली प्रार्थना होती है।

बुद्धिर्विकुण्ठिता नाथ समाप्ता मम युक्तयः।

अपनी बुद्धि कुण्ठित हो जाय, अपनी युक्तियाँ, अपना उद्योग सब फेल हो जाय, ऐसे समयमें असली प्रार्थना होती है, नहीं तो अपने बल आदिके अभिमानका अंश रहनेसे नकली प्रार्थना होती है। नकली प्रार्थनासे काम नहीं होता। जो लोग कहते हैं कि हमने प्रार्थना की, पर कुछ नहीं हुआ तो वास्तवमें उनसे असली प्रार्थना हुई ही नहीं! प्रार्थना की नहीं जाती प्रत्युत भीतरसे निकलती है, अर्थात् स्वतः होती है। अगर भीतरसे असली प्रार्थना हो तो तत्काल काम होता है।

जब अपने बलका, योग्यताका, पदका, विद्याका, बुद्धिका, वर्णका, आश्रमका, सम्प्रदायका कोई-न-कोई सहारा रहता है, तब न तो असली प्रार्थना होती है और न असली शरणागति ही होती है। कारण कि अपने बल, योग्यता आदिका सहारा रहनेसे अहम् बना रहता है। जबतक अहम् है, तबतक असली प्रार्थना और असली शरणागति नहीं होती। असली प्रार्थना और असली शरणागतिके बिना काम नहीं होता।

अपनेमें सर्वथा निर्बलताका अनुभव हो जाय, तब असली प्रार्थना और असली शरणागति होती है—***'सुने री मैंने निरबलके बल राम।'*** निर्बलताका अर्थ यह नहीं है कि हमारा शरीर निर्बल हो जाय, शरीरमें शक्ति न रहे, हम बीमार हो जायँ। निर्बलताका अर्थ है—अपने बलसे निराश हो जाना, अपने बलका किञ्चिन्मात्र भी सहारा,

भरोसा या अभिमान न होना। बुद्धिबल, मनोबल, धनबल, तनबल, बाहुबल, विद्याबल आदि सबसे निराशा हो जाय और भगवत्प्राप्तिकी तीव्र आशा हो जाय, तब प्रार्थना तत्काल काम करती है। अपने बलकी आशा रहे और भगवत्प्राप्तिसे निराश हो जायँ, तब प्रार्थना काम नहीं करती।

ऐसा कोई भी असम्भव काम नहीं है, जो भगवान्‌की प्रार्थनासे सम्भव न हो जाय। कारण कि भगवान्‌का बल अपार है, असीम है, अनन्त है। भगवान्‌के बलका वर्णन शब्दोंसे कोई भी नहीं कर सकता। हम उनको जितना अपार, असीम, अनन्त समझते हैं, उससे भी वे बहुत विलक्षण अपार हैं, विलक्षण असीम हैं, विलक्षण अनन्त हैं। अपार, असीम और अनन्त शब्द तो सापेक्ष हैं अर्थात् पारकी अपेक्षा अपार है, सीमाकी अपेक्षा असीम है, अन्तकी अपेक्षा अनन्त है,

पर भगवान् निरपेक्ष हैं। उनकी प्रार्थना और शरणागति निर्बल होनेसे होती है—

जब लगि गज बल अपनो बरत्यो, नेक सर्‌यो नहिं काम।
निरबल ह्वै बलराम पुकार्‌यो, आये आधे नाम॥

एक भगवान्‌के सिवाय किसीका आश्रय न रहे—

एक भरोसो एक बल एक आस बिस्वास।
एक राम घन स्याम हित चातक तुलसीदास॥

जबतक बल, बुद्धि, योग्यता, वर्ण, आश्रम आदिका किञ्चिन्मात्र भी आश्रय है, तबतक अनन्य पुकार नहीं होती। अपने बल, बुद्धि आदिका किञ्चिन्मात्र भी आश्रय न हो और ऐसा अनुभव हो कि मैं अपने बल, बुद्धि, योग्यता आदिसे भगवान्‌को प्राप्त कर ही नहीं सकता, अपने दुःखको दूर कर ही नहीं सकता,

तब भगवान्‌का बल काम करता है।

साधकको चाहिये कि वह अपनेमें निर्बलताका अनुभव करके भगवान्‌पर ही निर्भर हो जाय, उनके ही परायण हो जाय कि हे नाथ! आपके सिवाय मेरा कोई आश्रय नहीं है, कोई शक्ति नहीं है। ऐसा होकर निश्चिन्त हो जाय तो तत्काल काम होता है, जबकि अपनी साधनाके बलसे वर्षोंतक काम नहीं होता। इसमें एक मार्मिक बात है कि अपनी शक्ति तो पूरी लगानी चाहिये, पर आश्रय भगवान्‌का ही रखना चाहिये। इसलिये गीताने कहा है—

जरामरणमोक्षाय मामाश्रित्य यतन्ति ये।
ते ब्रह्म तद्विदुः कृत्स्नमध्यात्मं कर्म चाखिलम्॥

(७। २९)

'जरा और मरणसे मोक्ष पानेके लिये जो

मेरा आश्रय लेकर यत्न करते हैं, वे उस ब्रह्मको, सम्पूर्ण अध्यात्मको और सम्पूर्ण कर्मको भी जान जाते हैं।'

साधक यत्न तो करे, पर भरोसा यत्नपर न रखकर भगवान्‌पर रखे। जैसे भगवान्‌ने बायें हाथकी छोटी अँगुलीके नखपर गोवर्धन पर्वतको उठा लिया और ग्वालबालोंसे कहा कि सब अपनी-अपनी लाठी लगाओ। सबने अपनी लाठियाँ लगा दीं, पर उनके मनमें यह भाव आया कि हम सब ग्वालबालोंने अपनी लाठियोंसे सहारा लगाया है, तभी पर्वत ठहरा है। उनके मनमें ऐसा भाव आनेपर भगवान्‌ने उनके बलका अभिमान दूर करनेके लिये अपनी अँगुलीको थोड़ा-सा नीचे किया तो सब चिल्लाने लगे कि अरे दादा, मरे-मरे! भगवान्‌के द्वारा ऐसा करनेका तात्पर्य था कि तुम अपना बल तो

लगाओ, पर आश्रय अपने बलका मत रखो। तत्परता तो पूरी हो पर अपने बलका अभिमान न हो। इसलिये भगवान्‌ने अर्जुनसे कहा—

'निमित्तमात्रं भव सव्यसाचिन्' (गीता ११। ३३)

'हे सव्यसाची! तुम निमित्तमात्र बन जाओ।'

निमित्तमात्र बननेका अर्थ है कि अपनी शक्ति तो पूरी लगाओ, पर अपनी शक्तिका किञ्चिन्मात्र भी भरोसा मत रखो। थोड़ा-सा काम कर देना निमित्तमात्र बनना नहीं है। अर्जुन दोनों हाथोंसे बाण चलाते थे। वे दायें हाथसे बाण चलाकर जैसा निशाना मारते थे, वैसा ही निशाना बायें हाथसे बाण चलाकर मारते थे। इसलिये अर्जुनका नाम 'सव्यसाची' था। भगवान् अर्जुनको 'सव्यसाची' सम्बोधन देकर यह कहते हैं कि तुम अपनी पूरी शक्ति लगाओ, पर मनमें यह बात मत रखो कि मेरे बलसे,

मेरी विद्यासे काम हो जायगा। जो कुछ होगा, मेरी कृपाके बलसे होगा। इसलिये भगवान्‌की कृपाका आश्रय लेकर प्रार्थना की जाय तो भगवान्‌की अपार विलक्षण शक्ति तत्काल काम करती है। रामचरितमानसमें आया है—

मसकहि करइ बिरंचि प्रभु अजहि मसक ते हीन।

(उत्तर० १२२ ख)

जो चेतन कहँ जड़ करइ जड़हि करइ चैतन्य।

(उत्तर० ११९ ख)

तृन ते कुलिस कुलिस तृन करई।

(लंका० ३५। ४)

तात्पर्य है कि भगवान् असम्भवको सम्भव और सम्भवको असम्भव बनानेमें सर्वथा समर्थ हैं—'**कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुं समर्थः।**' उनमें किसी तरहकी असामर्थ्य नहीं है। वे सब तरहसे पूर्ण हैं।

बल, बुद्धि, विद्या, योग्यता आदि किसी भी विषयमें उनमें किञ्चिन्मात्र भी कमी नहीं है। ऐसे सर्वथा परिपूर्ण, सर्वसमर्थ भगवान्‌के साथ हमारा सम्बन्ध हो जायगा तो उनकी सब शक्ति हमारेमें आ जायगी। जैसे बिजलीके तारके साथ सम्बन्ध होनेपर पंखा भी चलता है, अँगीठी भी जलती है, बर्फ भी जमती है, प्रकाश भी होता है। एक ही शक्तिसे अनेक परस्परविरुद्ध कार्य हो जाते हैं। ऐसे ही संसारकी उत्पत्ति करनेमें, पालन करनेमें और संहार करनेमें एक ही शक्ति काम करती है। जब प्रार्थनाके द्वारा भक्त ऐसे सर्वसमर्थ भगवान्‌के सम्मुख हो जाता है, तब उसमें किसी तरहकी कमी कैसे रह सकती है? कमी रहनेकी सम्भावना ही नहीं है। भगवान् कहते हैं—

यो मामेवमसम्मूढो जानाति पुरुषोत्तमम्।
स सर्वविद्भजति मां सर्वभावेन भारत॥

(गीता १५। १९)

'हे भारत! इस प्रकार जो मोहरहित मनुष्य मुझे पुरुषोत्तम जान लेता है, वह सर्ववित् मनुष्य सब प्रकारसे मेरा ही भजन करता है।'

जो भगवान्‌को पुरुषोत्तम जानता है, वही सर्ववित् (सर्वज्ञ) होता है। संसारकी बहुत बातें जाननेसे मनुष्य सर्ववित् नहीं होता। भगवान्‌की शक्ति अपार, असीम, अनन्त, अगाध है—ऐसा जिसका दृढ़ विश्वास है, वह सब प्रकारसे भगवान्‌का ही भजन करता है। उसकी दृष्टि भगवान्‌के सिवाय दूसरी तरफ जाती ही नहीं। भगवान्‌के सिवाय और किसीका कोई सहारा नहीं रहता और किसीका कोई मूल्य नहीं रहता और किसीसे कोई आशा नहीं रहती। वह सब तरफसे निराश हो जाता है। मैं अपने बलसे कर लूँगा—यह बात उसके हृदयसे सदाके लिये उठ जाती है। ऐसी स्थितिमें असली शरणागति

होती है, असली प्रार्थना होती है। भगवान् कहते हैं—

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥

(गीता १८। ६६)

'सम्पूर्ण धर्मोंका आश्रय छोड़कर तू केवल मेरी शरणमें आ जा। मैं तुझे सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त कर दूँगा, तू चिन्ता मत कर।'

अपने बल, बुद्धि, विद्या आदिका किञ्चिन्मात्र भी आश्रय या अभिमान न रखकर भगवान्‌की अनन्य शरण होना हमारा काम है और सम्पूर्ण पापोंसे सदाके लिये मुक्त करना भगवान्‌का काम है। कारण कि हम ही भगवान्‌से विमुख हुए हैं, भगवान् हमारेसे कभी विमुख नहीं हुए। अगर हम अनन्यभावसे भगवान्‌के शरण हो जायँ तो फिर भगवान्‌की शक्तिसे बहुत

जल्दी तथा सुगमतासे कल्याण हो जायगा। इसलिये भगवान् आश्वासन देते हैं कि मेरी शरणमें आनेसे मैं सम्पूर्ण पापोंसे, दुःखोंसे, बन्धनोंसे मुक्त कर दूँगा, फिर तुम चिन्ता क्यों करते हो?

www.swamiramsukhdasji.net

www.swamiramsukhdasji.net

http://satcharcha.blogspot.com/

(Daily hindi message)

[The Bhagavad Gita - Sadhak Sanjivani]

[Shri Swami Ramsukdasji]

[Facebook – English]

[Facebook - Hindi]

[www.gitapress.org]

[www.gitaprakashan.com]

Contact:

[sadhak@swamiramsukhdasji.net]